(गाथा) १७३-१७४ नियमसार।

परिणामपुव्ववयणं जीवस्स य बंधकारणं होइ।
परिणामरहियवयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।।१७३।।

ईहा-पुव्वं वयणं जीवस्स य बंधकारणं होइ।
ईहारहियं वयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।।१७४।।

---

* साभिलाषस्वरूप=जिसका स्वरूप साभिलाष (इच्छायुक्त) हो ऐसे।

रे बन्ध कारण जीव को परिणामपूर्वक वचन हैं।
है बन्ध ज्ञानी को नहीं परिणाम विरहित वचन है॥१७३॥

है बन्ध कारण जीव को इच्छा सहित वाणी अरे।
इच्छा रहित वाणी अतः ही बन्ध नहिं ज्ञानी करे॥१७४॥

टीका : यहाँ वास्तव में ज्ञानी को (केवलज्ञानी को) बन्ध के अभाव का स्वरूप कहा है। कोई ऐसा कहता है कि केवलज्ञानी को भाषा जो है, वह भाषावर्गणा का वचन पहले समय में ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में छोड़ते हैं। ऐसा कहते हैं। यह बात मिथ्या है। श्वेताम्बर में ऐसा लेते हैं। हम पालीताणा गये थे न? वहाँ रामविजय थे। हमारी सभा में बहुत लोग थे। उन्हें खबर पड़ी तो कहे, नहीं। केवली वचन ग्रहण करते हैं। पहले समय में ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं। यहाँ कहते हैं कि वे वचन को स्पर्श ही नहीं करते। आहाहा! भगवान अरूपी चैतन्य; वाणी रूपी जड़, दोनों के बीच तो अत्यन्त अभाव है।

आत्मा **सम्यग्ज्ञानी (केवलज्ञानी) जीव कहीं भी स्वबुद्धिपूर्वक अर्थात् स्वमनपरिणामपूर्वक...** मन के परिणामपूर्वक **वचन नहीं बोलता।** आहाहा! क्या कहते हैं? भाषावर्गणा की वचन की पर्याय उस समय में होनेवाली है, वह होती है। आत्मा से नहीं। आहाहा! कौन माने? जिस समय में भाषावर्गणा... **क्यों?...** कि चेतन में स्व-परप्रकाशक शक्ति है और वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति है। आहाहा! वाणी में, भगवान के कारण नहीं। भगवान का केवलज्ञान है, इसलिए वाणी में कुछ शक्ति आयी, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान को केवलज्ञान है तो छद्मस्थ की अपेक्षा उस वाणी में कुछ विशेष फेरफार पड़ा, ऐसा नहीं है। वह तो उसी समय वाणी के जो परमाणु भाषावर्गणारूप थे, वह भाषावर्गणा, वचनवर्गणारूप से हुई, उसमें आत्मा का कुछ अधिकार नहीं है। केवली का अधिकार बिल्कुल नहीं है। आहाहा! वहाँ भी नहीं और यहाँ भी नहीं। यहाँ भी यह वचन है, वह वचन स्वतन्त्र निकलता है, आत्मा से नहीं। आहाहा! यह वचन जो निकलता है, वह भाषावर्गणा में से भाषा आती है। आत्मा तो अरूपी है, आत्मा तो उसे स्पर्श नहीं करता। वाणी तो आत्मा को स्पर्श नहीं करती... आहाहा! और वाणी निकलती है।

यहाँ कहते हैं, वाणी निकलने के दो प्रकार। भगवान तो '**अमनस्काः केवलिनः**' **(केवली मनरहित हैं) ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से। इस कारण से (ऐसा समझना कि)—जीव को मन-परिणतिपूर्वक वचन बन्ध का कारण है...** आहाहा! मन में जुड़ान हो... सूक्ष्म बात है, प्रभु! अन्तर्मन परमाणु है। यहाँ अनन्त परमाणु है, उनमें जो जुड़ान हो-जुड़ान अर्थात् सम्बन्ध। उस सम्बन्धपूर्वक यदि वाणी निकले तो रागपूर्वक वाणी बन्ध का कारण है। आहाहा! है ? **जीव को मन-परिणतिपूर्वक...** आहाहा! आत्मा की परिणतिपूर्वक नहीं। आहाहा! भाषा निकलती है, वह आत्मा से नहीं। दिव्यध्वनि... आहाहा! दुनिया के पुण्य के कारण निकलती है, ऐसा निमित्त है। वह तो उस समय भाषा की पर्याय निकलनी थी, वह निकली है। आहाहा! इसी प्रकार प्रत्येक समय में प्रत्येक पदार्थ की जो कुछ पर्याय होती है, वह स्वयं से पर्याय के काल में पर्याय होती है। दूसरे से नहीं तथा आगे-पीछे नहीं, आगे-पीछे नहीं। आहाहा!

यह वचन **मन-परिणतिपूर्वक वचन बन्ध का कारण है, ऐसा अर्थ है और मनपरिणतिपूर्वक वचन तो केवली को होता नहीं है;...** आहाहा! केवली को ऐसा नहीं होता कि मैं समझाऊँ, वाणी निकालूँ। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने भी समयसार बनाकर—टीका बनाकर अन्तिम श्लोक में कहा, अरे! जीवों! मैं यह वाणी-टीका करता हूँ, ऐसा न मानो। आहाहा! टीका की पर्याय जड़ और मेरी पर्याय चेतन। इस टीका की पर्याय मैंने की नहीं है। आहाहा! एक बात। दूसरी बात कि हमारी टीका तुम्हारे कान में पड़ती है तो उससे कुछ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। अरे! आहाहा! वाणी हमसे तो नहीं परन्तु वाणी तुझे कान में पड़े तो कान को भी वाणी स्पर्श नहीं करती और आत्मा को तो छूती ही नहीं। तथा ज्ञान जो अन्दर होता है, वह वाणी से नहीं होता। उस समय की उस जीव की ज्ञान की पर्याय होनेवाली है, वह होती है। आहाहा! गजब बात है।

जिस समय में जिस द्रव्य की पर्याय स्वयं से होती है, उस पर्याय में षट्कारक हैं। क्या कहते हैं ? भाषा जो बोली जाती है, वह भाषावर्गणा की पर्याय है। उस पर्याय में षट्कारक हैं। पर्याय में। पर्याय कर्ता, पर्याय का कर्ता पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, पर्याय का साधन पर्याय, पर्याय करके अपने में रखना, पर्याय से पर्याय हुई और पर्याय का आधार पर्याय। एक समय में षट्कारक से भाषा उत्पन्न होती है। भगवान से नहीं।

आहाहा! साधारण लोगों को तो... भगवान से तो नहीं परन्तु दूसरे किसी प्राणी को मनपूर्वक राग होता है, उससे भी वाणी नहीं निकलती। आहाहा! वाणी के काल में ही भाषावर्गणा में जो वाणी होने की पर्याय का काल है, तब वह होती है। उसके बदले हम कहते हैं, हमने ऐसा समझाया, उसको ऐसा कहा, यह सब मिथ्यात्व का अहंकार है। मिथ्यात्व का अहंकार है। आहाहा! क्योंकि पर का कर नहीं सकता और हम कर सकते हैं, ऐसा मानना, (वह मिथ्यात्व है)। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा!

यहाँ यह कहते हैं, मनपरिणति का भगवान को अभाव है। इसलिए **वचन बन्ध का कारण है, ऐसा अर्थ है और मनपरिणतिपूर्वक वचन तो केवली को होता नहीं है;...** मनपरिणतिपूर्वक वचन तो होता ही नहीं। आहाहा! वीतराग... वीतराग। एक परमाणु की पर्याय भी आत्मा नहीं कर सकता।

एक परमाणु में दो गुण चिकनाई हो और दूसरे परमाणु में चार गुण चिकनाई (स्निग्धता) होवे तो दोनों मिलकर चार होते हैं, तो एक परमाणु में दो के चार हुए। वे चार जो (हुए वे) दूसरा परमाणु है, उसके कारण से नहीं। आहाहा! क्या कहा? शास्त्र में ऐसा आता है कि एक परमाणु में दो गुण स्निग्धता (हो और) दूसरा चार गुण स्निग्धता हो तो स्कन्ध होता है परन्तु एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता और यह दो स्निग्धता थी और यहाँ चार हुई, इसलिए चार के कारण वहाँ दो हुई, ऐसा नहीं है। चार के कारण चार हुई। दो पर्याय थी, वहाँ चार (हुई) तो उसके कारण चार हुई नहीं है। अपनी पर्याय में ही चार होने की उस समय की योग्यता थी। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं **केवली को होता नहीं है; (तथा) इच्छापूर्वक वचन ही साभिलाषस्वरूप जीव को...** सअभिलाषा-इच्छापूर्वक। आहाहा! **जीव को बन्ध का कारण है....**

मुमुक्षु : अभिलाषासहित होवे तो बन्ध का कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा-इच्छा। इच्छापूर्वक वाणी निकलती है, वह बन्ध का कारण है। प्रभु! कठिन बात। छद्मस्थ को भी इच्छा करके मैं बोलूँ, यह मिथ्या बात है। भाषा परमाणु की पर्याय उस समय स्वतन्त्र (होती है)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! भाषा बोल सकता नहीं। आहाहा! तो फिर शरीर को हिला सके? आहाहा! यह कहते हैं।

केवली के मुखारविन्द से निकली हुई,... आहाहा! इसमें दो अर्थ हैं। मुखारविन्द लौकिक की अपेक्षा से कहा है। बाकी तो पूरे शरीर में से ॐ निकलता है। भगवान को पूरे शरीर में से ॐध्वनि निकलती है। मुखारविन्द से तो लोगों की भाषा की अपेक्षा से कहा है। समझ में आया? भगवान की वाणी मुख से नहीं निकलती। मुख तो बन्द है, होंठ बन्द है, अन्दर से पूरे शरीर में से ॐध्वनि (होती है)। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे। ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारै...' आहाहा! 'रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारै।' ये दोनों स्वतन्त्र हैं। आहाहा! बहुत कठिन काम।

वाणी के कर्ता नहीं। केवली कर्ता तो नहीं परन्तु छद्मस्थ कर्ता नहीं। आहाहा! क्योंकि वाणी परमाणु है। एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ जुड़ता नहीं। यह स्कन्ध है। इसमें एक परमाणु दूसरे परमाणु से स्पर्श नहीं करता। गजब बात है, प्रभु! यह अनन्त परमाणु का स्कन्ध-पिण्ड है। इसमें एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! प्रत्येक परमाणु अपने स्वचतुष्टय में रहता है। स्वचतुष्टय का अर्थ (यह कि) अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपना काल और अपना भाव। पर को तो एक परमाणु स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तब यह शोर मचाते हैं कि कर्म के कारण विकार होता है और कर्म के कारण विकार होता है। सब झूठा है। आहाहा! कठिन काम है। वस्तु की मर्यादा...

कोई भी द्रव्य अनन्त गुण से भरपूर है। आत्मा में गुण इतने हैं कि तीन काल के समय के... एक सेकेण्ड में असंख्य समय, ऐसे तीन काल के समय, उससे अनन्तगुणे गुण हैं। आत्मा में उससे अनन्तगुणे गुण हैं। परन्तु वे गुण होने से कोई गुण ऐसा नहीं है कि... यह प्रश्न चला था कि इसमें अनन्त गुण हैं तो एक गुण इच्छा करे, राग करे, पर का कर दे, ऐसा कोई गुण होवे तो क्या दिक्कत है? ऐसा प्रश्न चला था। नहीं। कुछ पर का कर सके, यह बात तीन काल में नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी कर सके, मदद करे, सेवा करे, सहायक हो, सहारा दे, यह बात होती नहीं। आहाहा! कठिन बात है। यह यहाँ कहते हैं।

साभिलाषस्वरूप जीव को बन्ध का कारण है और **केवली के मुखारविन्द से निकली हुई,...** यह चर्चा अभी चलती है कि किसी समय मुखारविन्द से निकलती है और किसी समय आत्मा के शरीर में से (निकलती है - ऐसा लिखा है)। पंचास्तिकाय

की टीका में पहले पूरे शरीर में से ॐ निकला, ऐसा पाठ है। उनके मुखारविन्द से। यह व्यवहार है। मुखारविन्द से कहा, यह व्यवहार से। बाकी निश्चय से ॐध्वनि पूरे शरीर में से निकलती है। होंठ बन्द। आहाहा! शरीर कँपता नहीं, अन्दर भाषा बोले नहीं और पूरे शरीर में से ॐ आवाज आती है। यह ॐ गणधर सुनते हैं और गणधर देव, शास्त्र की रचना करते हैं। आहाहा! यह शास्त्र की रचना करते हैं, उसे भी यहाँ ... कहा है।

प्रभु! हमने यह टीका बनायी है, ऐसा मत मानो। इस मोह से मत नाचो और इस टीका से तुझे ज्ञान होता है, ऐसे मोह में न नाचो। आहाहा! क्योंकि टीका की वाणी भिन्न है, तेरा तत्त्व भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग से... ओहो! एक-एक रजकण और एक-एक आत्मा अपनी पर्याय के अतिरिक्त, वह भी षट्कारक से पर्याय उत्पन्न होती है, इसके अतिरिक्त पर का कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, केवली को वचन, मनपूर्वक नहीं है, इच्छापूर्वक नहीं है, इसलिए वाणी बन्ध का कारण नहीं है। वाणी, वाणी के कारण से निकली। आहाहा! भाई! प्रत्येक पदार्थ अपने चतुष्टय में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से विराजमान है। किसी को किसी का अवलम्बन-आश्रय नहीं है। आता है न? ... आता है। लोक को बनाकर (लिखते हैं) अन्योअन्य परस्पर उपग्रह करो। अखबार में बहुत आता है। परस्परोग्रह - परस्पर उपकार करते हैं। ऐसा है नहीं। उसका (उस सूत्र का) ऐसा अर्थ वचनिका में है। सर्वार्थसिद्धि वचनिका में ऐसा लिया है कि उपग्रह कहा न? वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। निमित्त पर को-वाणी को करे, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! एक-एक आत्मा और एक-एक परमाणु (स्वतन्त्र परिणमित होता है)।

यहाँ कहते हैं, इच्छापूर्वक भगवान की वाणी नहीं है। **समस्त जनों के हृदय को आह्लाद के कारणभूत...** यह भी व्यवहार। **समस्त जनों के हृदय को आह्लाद के कारणभूत दिव्यध्वनि...** आहाहा! श्रोता को आह्लाद होता है, वह तो स्वयं के कारण से है। वाणी तो निमित्तमात्र है। निमित्त पर में कुछ नहीं करता। निमित्त की अस्ति है। किसी भी कार्य में निमित्त की अस्ति सहायक होती है परन्तु निमित्त से उसमें कुछ होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह इसके ऊपर रहा है। नहीं, नहीं। एक-एक परमाणु स्वयं में रहा हुआ है। कठिन बात है, भगवान! एक-एक परमाणु स्वयं में षट्कारक

से रहा है। कोई उसके नीचे के कारण से रहा है और अँगुली उसको स्पर्श करती है, उसका भगवान निषेध करते हैं। अँगुली उसे स्पर्श नहीं करती। क्योंकि उसमें और अँगुली, दोनों में अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव है। तो अत्यन्त अभाव है, उसमें स्पर्श करना कहाँ से आया? हमारी गुजराती भाषा में अड़े (कहते हैं)। स्पर्श करे, पर में प्रवेश करे, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! कठिन काम है। यह सब व्यापार-धन्धा, दुकान में बैठकर (करे)। यह धन्धा-बन्धा आत्मा से नहीं होता। ऐई! मनसुख! यह धन्धा अपने से नहीं होता। धन्धा के परमाणु की पर्याय उस समय में ऐसी होनेवाली हो, वह होती है। आत्मा इस धन्धे की पर्याय का कर्ता बने, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग दुनिया में कहीं नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ में, उसमें भी दिगम्बर में जो बात है, ऐसी बात कहीं है नहीं। ऐसी बात किसी स्थान में नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि वाणी मनपूर्वक नहीं होती है। **समस्त जनों के हृदय को आह्लाद के कारणभूत...** देखो! निमित्त कहा। यह निमित्त से लिया। सुननेवाले के हृदय में आह्लाद होता है, उसका-आह्लाद का कर्ता तो वह आत्मा है। वाणी तो निमित्त है। वाणी से वहाँ आह्लाद होता है, ऐसा है नहीं। कठिन बात है। मार्ग बहुत कठिन प्रभु! आहाहा! **समस्त जनों के...** भाषा है न? कि **समस्त जनों के...** थोड़े लोगों के लिये नहीं। सर्व जनों के **हृदय को आह्लाद के कारणभूत...** उनके हृदय को आह्लाद के निमित्तरूप। कारणरूप अर्थात् निमित्तरूप। आहाहा! **दिव्यध्वनि तो अनिच्छात्मक (इच्छारहित) होती है;...** भगवान को दिव्यध्वनि अनिच्छात्मक होती है। आहाहा! जड़ को क्या खबर पड़े कि यह सर्वज्ञ है और मैं सर्वज्ञ की बात करता हूँ। आहाहा! सर्वज्ञ हुए और दिव्यध्वनि आयी, यह जड़ को कहाँ खबर है?

मुमुक्षु : ६६ दिन तक वाणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : ६६ दिन तक वाणी नहीं निकली। वाणी होने के योग्य नहीं थी। वाणी होने के लायक परमाणु नहीं थे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो मुद्दे की बात है। मुद्दे की बात समझना बहुत कठिन, बहुत कठिन। आहाहा! पूरी दुनिया मैं करूँ... मैं करूँ... 'मैं करूँ... मैं करूँ... यही अज्ञान है, गाड़ी का भार जो श्वान खींचे।' जैसे गाड़ी बैल से चलती है, उसके नीचे कुत्ता खड़ा हो तो उसे स्पर्श करे तो ऐसा मानो कि मुझसे

गाड़ी चलती है। इसी प्रकार जगत के पदार्थ अपनी परिणति से परिणम रहे हैं, वहाँ मनुष्य खड़ा हुआ हो, ऐसा मानता है कि मुझसे होता है, वह कुत्ते जैसा है। यहाँ तो सत्य है न, बापू! आहाहा!

वीतरागदेव त्रिलोक नाथ... मुनि तो नागा बादशाह से आघा। ये तो नग्न मुनि हैं, इन्हें बादशाह की परवाह नहीं है। जिन्हें समाज की परवाह नहीं है कि इस वचन से समाज सुगठित रहेगा या नहीं? आहाहा! ऐसे उपदेश से समाज में समतोल (रहेगा नहीं) और भाग पड़ जाएँगे या नहीं? दरकार नहीं है। एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ। आहाहा! मार्ग यह है।

समस्त जनों के हृदय को आह्लाद के कारणभूत... कारणभूत है, हों! निमित्त। **दिव्यध्वनि तो अनिच्छात्मक (इच्छारहित) होती है; इसलिए सम्यग्ज्ञानी को (केवलज्ञानी को) बन्ध का अभाव है।** केवली को मनपरिणतिपूर्वक भाषा नहीं है। भाषा, भाषा के कारण से है। इसलिए उन्हें बन्ध नहीं है। आहाहा! कठिन बातें! भाषा निकले, उसके काल में निकले। स्वकाल है। भाषा निकलने का क्रमबद्ध... जिस समय में एक भाषा की पर्याय होनेवाली हो, उस समय में क्रमबद्ध होती है। पर के कारण से नहीं। आहाहा! पर्याय में क्रमबद्ध जिस समय में जो पर्याय होनेवाली हो, वह उस समय में होगी। ऐसा अनादि-अनन्त सब पदार्थ में क्रमबद्धपर्याय है। केवली भी क्रमबद्धपर्याय को बदल नहीं सकते। आहाहा! तो फिर भाषा कहाँ से कर सकते हैं? बहुत विचार नहीं, गहरा विचार किया नहीं। ऐसे का ऐसा संसार के जगजाल में धन्धा-धन्धा, मजदूरी, मजदूरी में प्रभु की वाणी (एक ओर रह गयी)। आहाहा!

केवली कहते हैं कि मुझसे वाणी नहीं होती। आहाहा! मेरी इच्छा और मन नहीं है, इसलिए वाणी नहीं है। अज्ञानी को इच्छापूर्वक वाणी निकलती है। वह वाणी इच्छा है, इसलिए निकलती है, ऐसा नहीं है परन्तु इच्छापूर्वक वाणी है, इसलिए उस इच्छा के कारण बन्धन है। अल्पज्ञ प्राणी को सर्वज्ञ के अतिरिक्त इच्छा है, वाणी वाणी के कारण से निकलती है। इच्छापूर्वक वाणी नहीं निकलती। इच्छापूर्वक कहने का अर्थ यह है कि भगवान को इच्छा नहीं है और इसको इच्छा है इतना। परन्तु इच्छा से वाणी होती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को जँचे किस प्रकार? आहाहा!

इस जमीन पर पैर चलते हैं न, तो पैर के रजकण जमीन को स्पर्श नहीं करते। जमीन को स्पर्श नहीं किया और यह उन्हें नहीं छूता। आहाहा! अपनी-अपनी पर्याय में परिणमते हैं, काम लेते हैं। दूसरे की पर्याय नहीं करते और पर्याय के साथ जुड़ते नहीं। आहाहा! यह बात यहाँ की है। इच्छारहित भगवान को बन्धन नहीं है। **इसलिए सक्ष्मग्ज्ञानी को (केवलज्ञानी को) बन्ध का अभाव है।**

श्लोक-२८९

[अब इन १७३-१७४ वीं गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:—]

(मंदाक्रांता)

ईहा-पूर्वं वचन-रचना-रूप-मत्रास्ति नैव,
तस्मादेषः प्रकटमहिमा विश्वलोकैकभर्ता।
अस्मिन् बन्धःकथमिव भवेद्द्रव्यभावात्मकोऽयं,
मोहाभावान्न खलु निखिलं रागरोषादिजालम्।।२८९।।

(वीरछन्द)

इच्छा सहित वचन रचना का केवलि प्रभु को नहीं विधान।
अतः लोक के एक नाथ वे जिनवर अतिशय महिमावान॥
द्रव्यबन्ध अरु भावबन्ध उनको हो सकता है कैसे?।
मोहक्षीण है अतः उन्हें नहिं रागद्वेष का पुञ्ज अरे!॥२८९॥

[श्लोकार्थः—] इनमें (केवली भगवान में) इच्छापूर्वक वचनरचना का स्वरूप नहीं ही है; इसलिए वे प्रगट-महिमावन्त हैं और समस्त लोक में एक (अनन्य) नाथ हैं। उन्हें द्रव्यभावस्वरूप ऐसा यह बन्ध किस प्रकार होगा? (क्योंकि) मोह के अभाव के कारण उन्हें वास्तव में समस्त राग-द्वेषादि समूह तो है नहीं।२८९।

श्लोक - २८९ पर प्रवचन

[अब इन १७३-१७४ वीं गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:—]

ईहा-पूर्वं वचन-रचना-रूप-मत्रास्ति नैव,
तस्मादेषः प्रकटमहिमा विश्वलोकैकभर्ता।
अस्मिन् बन्धःकथमिव भवेद्द्रव्यभावात्मकोऽयं,
मोहाभावान्न खलु निखिलं रागरोषादिजालम् ।।२८९।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **इनमें (केवली भगवान में) इच्छापूर्वक वचनरचना का स्वरूप नहीं ही है;...** गजब बात! ॐकार ध्वनि निकलती है, उसकी रचना करनेवाला (भगवान) आत्मा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वाणी के कारण से उस समय में निकलने की योग्यता से वाणी निकलती है। **इच्छापूर्वक वचनरचना का स्वरूप नहीं ही है;...** भगवान को। **इसलिए वे प्रगट-महिमावन्त हैं और समस्त लोक में एक (अनन्य) नाथ हैं।** इच्छा नहीं होती, मन के साथ जुड़ान नहीं होता तो वाणी तो कहाँ से आवे? ऐसे प्रभु अनन्य महामहिमावन्त परमात्मा देव की पहिचान कराते हैं। अरिहन्तदेव ऐसे होते हैं। आहाहा! जो वाणी के कर्ता नहीं, जिन्हें इच्छा नहीं, उन भगवान को रोग हो और उन्हें दवा हो और दवा लें, यह सब बात....

मुमुक्षु : भोजन ही न हो तो बीमार कैसे पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार के परमाणु को आत्मा स्पर्श ही नहीं करता। कठिन बात है, प्रभु! यह दाल, भात यहाँ जीभ को स्पर्श नहीं करते। जीभ उन्हें स्पर्श नहीं करती क्योंकि जीभ के परमाणु भिन्न हैं और आहार के परमाणु भिन्न हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ सम्बन्ध नहीं रखता। आहाहा! आहार करनेवाला आहार... यह तो आया है। तुम्हारे हिन्दी में भी होगा 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।' ऐसा आता है न कुछ? वह नाम कहाँ था? उसका अर्थ (यह कि) जो परमाणु जो इसके पास आनेवाले हैं, वे आयेंगे। यह कहे कि मैं यह लाऊँ, सब्जी लाऊँ, रोटी लाऊँ, यह लाऊँ - यह सब मिथ्याभ्रम है। आहाहा! समझ में आया? ला सकता नहीं, बना सकता नहीं। आहाहा!

केवली का दृष्टान्त दिया। तीन लोक का नाथ पूर्ण केवलज्ञान, समय एक... आहाहा!

समन्तभद्राचार्य स्तुति में (कहते हैं), प्रभु! आपका समय एक ओर इस द्रव्य में द्रव्य, गुण और पर्याय तीन। आप एक समय में द्रव्य-गुण-पर्याय तीन को जानते हो। वह भी एक के नहीं परन्तु अनन्त के। एक समय के दो भाग नहीं पड़ते। आहाहा! एक समय में... 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। ऐसे एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान होता है और प्रत्येक पदार्थ में द्रव्य-गुण-पर्याय तीन हैं। आप एक पर्याय और इन तीन को जानो? ऐसे अनन्त तीन को जानो। यह आपका सर्वज्ञ का चिह्न है। यह आपका सर्वज्ञ का लक्षण है। यह हमको बैठा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

प्रभु! समय एक। 'क' बोले उसमें असंख्य समय (जाते हैं)। आहाहा! एक समय में व्यवहार से अनन्त द्रव्य जो एक-एक द्रव्य में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों हैं, समय का भाग नहीं पड़ता और यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीन हैं। एक में तीन जाने, ऐसे अनन्त के तीन जानते हैं। एक समय में अनन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते हैं। प्रभु! यह कहा, हमको हुआ कि आप सर्वज्ञ हो। आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी वाणी कभी नहीं निकलती। आहाहा! समझ में आता है?

समय किसे कहते हैं? इसके दो भाग नहीं पड़ते। ऐसे एक समय में भगवान केवली त्रिलोकनाथ तीन काल-तीन लोक (जानते हैं)। आकाश का जहाँ अन्त नहीं, बाहर चौदह ब्रह्माण्ड हैं, वे असंख्य योजन में हैं। चौदह ब्रह्माण्ड। इसके अतिरिक्त अनन्त आकाश खाली... खाली... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... दशों दिशाओं में कहीं अन्त नहीं। उसमें यह चौदह ब्रह्माण्ड एक राई समान हैं। राई समान। अलोक अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त आकाश। चला ही जाता है। आकाश का कहाँ अन्त है? अन्त होवे तो बाद में क्या? आहाहा! उसका भी ज्ञान आप एक समय में करते हो। आहाहा!

यह देव की पहिचान कराते हैं। णमो अरिहन्ताणं करे, ऐसा कोई देव... देव— दिव्यशक्ति, जिसकी एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय एक-एक के तीन, एक-एक के तीन, ऐसे अनन्त के, समय के भेद पड़े बिना एक समय में प्रभु आप जानते हो, यह आपका सर्वज्ञ का लक्षण है। आहाहा! यह आया। आहाहा! समन्तभद्राचार्य ने टीका की है न? भक्ति-स्तुति करके? इस स्तुति में कहा है। आचार्य तो गजब काम कर गए हैं। आहाहा! कोई भी आचार्य दिगम्बर हो, गजब काम करते हैं।

वीतराग की वाणी में वीतराग को भुला दिया है। वीतराग की वाणी में ही मानो वीतराग हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **प्रगट-महिमावन्त हैं और समस्त लोक में एक (अनन्य) नाथ हैं।** नाथ अर्थात् जाननेवाले। नाथ अर्थात् रक्षा करनेवाले नहीं। नाथ है न? नाथ अर्थात् रक्षण करनेवाले नहीं। नाथ के दो अर्थ होते हैं। जोगक्षेम के करनेवाले को नाथ कहते हैं। जोगक्षेम करनेवाले को नाथ कहते हैं। इसका अर्थ? जो चीज़ है, उसे बराबर जाने न दे और दूसरी चाहिए हो नयी तो प्राप्त करावे, उसे जोगक्षेम कहा जाता है। जोग और क्षेम के भाव को यहाँ जोग कहते हैं। आहाहा! भगवान के पास तो वह भी नहीं है। आहाहा!

बापू! अरिहन्त किसे कहें? आहाहा! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय अपने द्रव्य-गुण को जाने; अपनी दूसरी अनन्त पर्याय व्यक्त है, उसे जाने; एक समय की पर्याय लोकालोक को जाने; एक समय की पर्याय वह एक ही वस्तु है। आहाहा! यह क्या कहा? एक ही पर्याय। ज्ञान की एक ही पर्याय। बस, एक पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने। एक समय की पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, एक समय की पर्याय अपनी अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें जाने। आहाहा! ऐसी तत्त्व की बात है, भगवान! आहाहा! सूक्ष्म लगती है परन्तु वस्तु तो ऐसी है।

परमात्मा तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं। वहाँ सब भाषण होते हैं। सिंह आता है, बाघ आता है, एकावतारी इन्द्र आता है। पहले देवलोक का इन्द्र एकावतारी है। सौधर्म देवलोक का इन्द्र और एक मुख्य इन्द्राणी, दोनों एक भव करनेवाले हैं। मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाले हैं। वे भगवान के पास सुनने जाते हैं। आहाहा! वह कैसी वाणी होगी! एकावतारी—एक भव में मोक्ष जाना निश्चित है। इन्द्र और इन्द्राणी भगवान के निकट सुनने जाते हैं। आहाहा! वहाँ समवसरण चलता है। महाविदेह में प्रभु का समवसरण चलता है। अरे! वहाँ का विरह पड़ गया। भरतक्षेत्र में प्रभु का विरह पड़ा।

कहते हैं कि तू प्रभु है न! तेरा विरह तुझे नहीं है। तेरा विरह तुझे नहीं है। तू आत्मा है न, नाथ! पूर्णानन्द और यह हम पंचम काल के प्राणी के लिए हम कहते हैं। ऐसा न समझो कि पंचम काल के प्राणी, इसलिए काल बाधक होता होगा। एक काल दूसरे काल को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! उस प्राणी को ऐसा कहते हैं। पंचम काल के प्राणी, अरे! अप्रतिबुद्ध को ऐसा कहते हैं। अड़तीस गाथा में कहा। आहाहा! समझता तो है। समझाया

इतना अपने में समझता है। परन्तु समयसार की ३८वीं गाथा में यहाँ तक किया, प्रभु! मैं जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त हुआ, वह अप्रतिहत है। मैं गिरनेवाला नहीं हूँ। पाँचवें काल का जीव ऐसा बोलता है। ३८ गाथा में है। समयसार ३८ (गाथा)। आहाहा! भगवान ने-मुनियों ने जब उसे समझाया, समझकर समकित प्राप्त हुआ, ज्ञान प्राप्त हुआ, चारित्र प्राप्त हुआ। ३८ (गाथा) में पाठ है। और कहते हैं कि प्रभु! यह अप्रतिहत है। मैं यहाँ सम्यग्दर्शन से छूँडूँ, वह कभी नहीं है। पंचम काल का प्राणी है तो भी कहता है कि सम्यग्दर्शन हुआ, वह गिरेगा नहीं। मैं गिरूँगा नहीं, ऐसा ३८वीं गाथा में पाठ है। समयसार की ३८ गाथा। आहाहा!

यह यहाँ कहा **मोह के अभाव के कारण उन्हें वास्तव में समस्त राग-द्वेषादि समूह तो है नहीं।** भगवान को। आहाहा! **द्रव्यभावस्वरूप ऐसा यह बन्ध किस प्रकार होगा?** ओहोहो! वाणी भी निकलती है तो कहते हैं कि मनपूर्वक नहीं। ज्ञानपूर्वक तो नहीं ही। क्या कहा? वाणी जो भगवान की... भगवान को पहिचानना, बापू! यह बात कहीं साधारण है? भगवान त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव कहते हैं कि हमें वाणी तो नहीं। हम वाणी तो बोलते ही नहीं। इच्छा ही नहीं है। हम तो आनन्द-ज्ञान में हैं। आहाहा! भाषा की पर्याय भी होती है। वह आता है-भविजन के पुण्य के कारण से। यह स्तवन में आता है। 'भवि भागन वश' यह भी निमित्त से कथन है। भवि भागन के वश, यह निमित्त से कथन है। आहाहा!

उस समय में वाणी की पर्याय दिव्यध्वनि में बराबर होनेवाली थी, वह वाणी हुई है। उसकी इच्छा तो करता नहीं, परन्तु उसका ज्ञान करता नहीं। केवलज्ञान, ज्ञान है, तो ज्ञान की पर्याय भी वाणी की कर्ता नहीं है। आहाहा! ऐसे सब प्राणी। भगवान! तू आत्मा ज्ञानस्वरूप है न, नाथ! ज्ञान किसे करे? वह ज्ञान तो दूसरे द्रव्य में अभावरूप है। वह ज्ञान उसमें अभावरूप है। और परद्रव्य के अभावरूप यह ज्ञान है। तेरा ज्ञान भी वाणी करे और शरीर को हिलावे, प्रभु! यह बात नहीं बनती। आहाहा! गजब बात है। वीतरागमार्ग... आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर, अरे! त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा, भरत में भगवान नहीं। भगवान रह गये महाविदेह में। आहाहा! एक वाणी रही। वाणी में से भगवान निकालना है। यह कहीं वाणी में से नहीं निकलेगा। अपना भगवान अपने भगवान में से निकलेगा। आहाहा! गजब बात है।

श्लोक-२९०

(मंदाक्रांता)

एको देवस्त्रिभुवन-गुरुर्नष्ट-कर्माष्टकार्धः,
सद्बोधस्थं भुवनमखिलं तद्गतं वस्तुजालम्।
आरातीये भगवति जिने नैव बन्धो न मोक्षः,
तस्मिन् काचिन्न भवति पुनर्मूर्च्छना चेतना च।।२९०।।

(वीरछन्द)

जो त्रिभुवन के गुरु हैं जिनने चार घाति का किया विनाश।
जिनका ज्ञान त्रिलोक-भवन के सकल पदार्थों का आवास॥
एक वही साक्षात् देव हैं उन्हें बन्ध या मोक्ष नहीं।
उन्हें नहीं है कोई मूर्छा और कोई चेतना नहीं॥२९०॥

[श्लोकार्थः—] तीन लोक के जो गुरु हैं, चार कर्मों का जिन्होंने नाश किया है और समस्त लोक तथा उसमें स्थित पदार्थसमूह जिनके सद्ज्ञान में स्थित हैं, वे (जिन भगवान) एक ही देव हैं। उन निकट (साक्षात्) जिन भगवान में न तो बन्ध है, न मोक्ष, तथा उनमें न तो कोई [१]मूर्छा है, न कोई [२]चेतना (क्योंकि द्रव्यसामान्य का पूर्ण आश्रय है)।२९०।

श्लोक - २९० पर प्रवचन

दूसरा श्लोक

एको देवस्त्रिभुवन-गुरुर्नष्ट-कर्माष्टकार्धः,
सद्बोधस्थं भुवनमखिलं तद्गतं वस्तुजालम्।
आरातीये भगवति जिने नैव बन्धो न मोक्षः,
तस्मिन् काचिन्न भवति पुनर्मूर्च्छना चेतना च।।२९०।।

१- मूर्छा=अभानपना; बेहोशी; अज्ञानदशा। २- चेतना=सभानपना; होश; ज्ञानदशा।

श्लोकार्थ : आहाहा! **तीन लोक के जो गुरु हैं, चार कर्मों का जिन्होंने नाश किया है...** भाषा, कथनी आवे (कि) चार कर्म का नाश किया। कर्म तो जड़ है। जड़ का आत्मा नाश कर सकता है? परन्तु यह निमित्त से कथन है। यह व्यवहार कथन है या निश्चय कथन है, यह समझे बिना गड़बड़ करते हैं। है? भगवान चार घातिकर्मों का नाश करते हैं, यह निमित्त है। वह कर्म है, कर्मरूपी पर्याय परिणमी है। उससे छूटकर अकर्मरूप परिणमे, ऐसी उसकी ताकत है। भगवान को केवलज्ञान हुआ, इसलिए चार घातिकर्म का नाश हुआ... आहाहा! ऐसा भी नहीं है। बहुत अन्तर। आहाहा!

मुमुक्षु : उलट-पुलट।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया से उलट-पुलट बात है, भाई!

परम सत्य, परम सत्य का पुकार है। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ का परम सत्य का पुकार जगत के समक्ष है। जगत सुने, समझे या नहीं समझे परन्तु उनका पुकार यह है। मेरे सामने देखने से भी तुझे राग होगा। मैं परद्रव्य हूँ। तेरा द्रव्य और मेरा द्रव्य कभी एकमेक है नहीं और मुझसे तुझे लाभ हो, यह बिल्कुल किंचित् झूठी बात है। आहाहा! यह तो केवली कहते हैं, वीतराग कहते हैं। दूसरे तो घर-बर चला देंगे।

यह ज्ञानस्वरूप भगवान... यह कहते हैं कि इतना ज्ञान मुझमें उत्पन्न हुआ तो भी मैं वाणी का कर्ता नहीं हूँ। मेरा भाव तो मुझमें काम करता है। मुझमें अन्दर आनन्द और शान्ति का काम करता है। वाणी बोलने में मेरा ज्ञान काम नहीं करता। आहाहा! है?

चार कर्मों का जिन्होंने नाश किया है.... यह भी व्यवहार। कर्म पर है, आत्मा पर है, तो पर, पर का कुछ कर सके, ऐसा तीन काल में नहीं होता। यह तो संक्षिप्त में कथन करना होवे तो कैसे करे? संक्षिप्त में यह कथन किया। भगवान ने चार कर्म का नाश किया। भगवान तो केवली, पृथक्, ये चार कर्म जड़। वे जड़ को छूते भी नहीं। छूआ नहीं तो नाश किस प्रकार करे? आहाहा! परन्तु वह कर्म जो होनेवाली पर्याय है, वह उसका अकर्म होने का पर्याय का काल था। कर्मरूपी पर्याय जो है, यहाँ भगवान को जहाँ ज्ञान हुआ तो कर्मरूप पर्याय जो है, वह अकर्मरूप हुई। वह इसके कारण से नहीं - केवलज्ञान के कारण से नहीं। आहाहा! गजब बात है। जगत को वीतरागमार्ग सर्वज्ञ का मार्ग अन्दर

में बैठना, बापू! अलौकिक बात है। भव का अभाव करे, ऐसी यह बात है। यह है न, भाई! बात ऐसी है। अरे रे! आहाहा!

तीन लोक के जो गुरु हैं, चार कर्मों का जिन्होंने नाश किया है और समस्त लोक तथा उसमें स्थित पदार्थसमूह जिनके सद्ज्ञान में स्थित हैं,... भाषा देखो! जिसके ज्ञान में लोकालोक स्थित है। है नहीं। लोकालोक सम्बन्धी अपना ज्ञान है, उस ज्ञान में लोकालोक ज्ञात होते हैं, इस कारण लोकालोक अपने ज्ञान में हैं, ऐसा कहने में आया है।

दूसरी बात। लोकालोक है तो यहाँ केवलज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। केवलज्ञान होने में पर की अपेक्षा है ही नहीं। एक स्वाश्रय भगवान त्रिलोकनाथ आत्मा अनन्त आनन्द का स्वामी, उस स्वाश्रय में जहाँ जाता है, वहाँ केवल(ज्ञान) पाता है। आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म पड़ेगा, प्रभु! परन्तु अब यह समझने जैसी बात है। पूरे दिन मैंने कार्य किया। यह किया और वह किया और यह किया। आहाहा! प्रभु! तू तो ज्ञाता है न, प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूप है न? ज्ञानस्वरूप क्या करे? ज्ञानस्वरूप जाने-देखे। ज्ञानस्वरूप करे? आहाहा! कठिन बात है। परमसत्य तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

उसमें स्थित पदार्थसमूह जिनके सद्ज्ञान में स्थित हैं,... भाषा देखो! लोकालोक ज्ञान में स्थित है। इसका अर्थ कि लोकालोक तो लोकालोक में है, परन्तु उस सम्बन्धी जो ज्ञान (उसमें लोकालोक झलकता है)। वास्तव में तो भगवान लोकालोक को जानते हैं, यह असद्भूतव्यवहार है। कठिन पड़ेगा। भगवान केवली लोकालोक को जानते हैं, यह असद्भूतव्यवहार है, परवस्तु है परन्तु अपनी पर्याय में उस स्व और पर को जानने की ताकत है तो अपने से जानते हैं। अपने में अपने से जानते हैं। आहाहा! गजब है, बापू! मार्ग अलग, प्रभु! साधारण लोग दया पालो, व्रत करो, प्रतिमा ले लो और यह ले लो। बापू! अनन्त बार किया, प्रभु! परन्तु तूने सत्य को हाथ दिया नहीं - तूने सत्य को स्पर्श किया नहीं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

सद्ज्ञान में स्थित हैं,... है? **उसमें स्थित पदार्थसमूह जिनके सद्ज्ञान में स्थित हैं, वे (जिन भगवान) एक ही देव हैं।** जगत में एक ही देव भगवान अरिहन्त हैं। आहाहा! भले ही सब बहुत देव कहते हैं परन्तु एक ही देव है। इनके अतिरिक्त कोई देव है नहीं। आहाहा! वैष्णव में कर्ता कहे, श्वेताम्बर में भगवान को रोग कहे, श्वेताम्बर में भगवान

को रोग कहते हैं। केवली को रोग! वे दवा खायें, सब विरुद्ध है। वीतरागमार्ग से विरुद्ध है। वीतरागमार्ग तो यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी का एक ही मत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही मत है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' एक ही मत—अभिप्राय त्रिकाल में है। आहाहा!

जिनके सद्ज्ञान में स्थित हैं, वे (जिन भगवान) एक ही देव हैं। आहाहा! दिव्य शक्ति प्रगट की, देव—आत्मदेव शक्तिरूप भगवान है। भगवान में से पर्याय में भगवान आये। प्राप्त में से प्राप्ति हुई। कुँए में से अवेड़ा को क्या कहते हैं? हौज में पानी आता है। कुँए में न हो तो हौज में कहाँ से आयेगा? इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर केवलज्ञान अनन्त-अनन्त गुण का सागर है। अनन्त गुण का सागर-समुद्र भरा है। आहाहा! उसमें से केवलज्ञान आया है। समझ में आया?

उन निकट (साक्षात्) जिन भगवान में न तो बन्ध है... आहाहा! **न मोक्ष,...** दोनों पर्याय हुई न? बन्ध और मोक्ष दो पर्याय है। पर्याय, वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! है? मोक्ष का अर्थ यह। पर्याय में तो मोक्ष है। बन्ध पर्याय है। परन्तु वह बन्ध और मोक्ष वह पर्याय है। संसार भी आत्मा की पर्याय है। स्त्री, पुत्र, परिवार, वह संसार नहीं है। वह तीन काल में संसार नहीं है। संसार—'संसरण इति संसार:।' अपने स्वरूप से हटकर राग-द्वेष में आवे, वह संसार। आहाहा! वह पर्याय है। मोक्ष भी एक पर्याय है, बन्ध भी एक पर्याय है। उस पर्याय को व्यवहार कहकर वह भगवान को नहीं है, ऐसा कहा। आहाहा! एक-एक शब्द में...

तथा उनमें न तो कोई मूर्छा है, न कोई चेतना (क्योंकि द्रव्यसामान्य का पूर्ण आश्रय है)। चेतना अर्थात् नया कुछ करना है, चेतना विशेष करनी है, यह केवली को नहीं है। वे पूर्ण हो गये हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)